

(इष्टोपदेश) पूज्यपादस्वामी कृत है। इसका दूसरा श्लोक चला है। दूसरे श्लोक में अन्तिम शब्द देखो।

दोहा - स्वर्ण पाषाण सुहेतु से, स्वयं कनक हो जाय।
सुद्रव्यादि चारों मिलें, आप शुद्धता थाय॥२॥

यह शब्द यहाँ है। कुन्दकुन्दाचार्य के अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ की २४ गाथा में है।

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।

कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि॥२४॥

(गाथा) २४ मोक्षपाहुड़। जैसे सुवर्ण पाषाण - सोने का पाषाण, सुवर्ण पाषाण, हों! पत्थर। जैसे सुवर्ण पाषाण सोधने की सामग्री के सम्बन्ध से... उसे साफ करने की सामग्री के योग से सोना शुद्ध सुवर्ण हो जाता है, वैसे काल आदि लब्धि... यह एक शब्द यहाँ अधिक पड़ा है। इस शुद्ध द्रव्य आदि में काल आ जाता है। काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावरूप सामग्री की प्राप्ति से, यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है, वही परमात्मा हो जाता है। देखो! इसमें भी सामग्री आयी थी। आयी थी न?

योग्य उपादानकारण के, संयोग से... देखो! योग्य उपादानकारण के, संयोग से... उसमें तो बहुत अर्थ निकले। नहीं? कल कहा था न? फिर पंचास्तिकाय में से निकला।

योग्य उपादानकारण का संयोग। संयोग के तीन प्रकार हैं। आत्मा में परद्रव्य का संयोग; उसे भी एक संयोग कहते हैं। एक, आत्मा में होते पुण्य-पाप के भाव; उन्हें भी संयोगीभाव कहा जाता है। समझ में आया? और एक, जैसे यह सोना अपनी शुद्धता को प्राप्त करता है; इस शुद्धता की पर्याय को प्राप्त हो, वह भी उस सामग्री से; यह योग निर्मल पर्याय का सोने को सम्बन्ध होता है, वह संयोग होता है। सोने को निर्मलपर्याय प्रगट हो, वह भी सोने को एक संयोग सम्बन्ध, सामग्री होता है। वह भी संयोग कहा जाता है। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा को शुद्धस्वरूप अन्तर्मुख आनन्दकन्द की दृष्टि करने पर जो निर्मल पर्याय का प्रगट होना होता है, उसे भी संयोग कहा जाता है। समझ में आया? इस वस्तु में चैतन्य द्रव्य की जो शुद्धता है उसकी पर्याय की, निर्मल पर्याय की प्राप्ति हुई, उसे भी सम्पर्क हुआ, सम्बन्ध हुआ, संयोग हुआ - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

संयोग के तीन अर्थ हुए — (1) आत्मा को कर्म जड़ का सम्बन्ध, वह संयोग - यह परद्रव्य के सम्बन्ध की अपेक्षा से बात है। (2) आत्मा में अनन्त आनन्द आदि गुणस्वरूप है, उनकी पर्याय में विकृत-विकारीभाव, शुभ-अशुभभाव (होता है), वह संयोगीभाव है, वह बन्ध का कारण है। संयोगी चीज, वह एक निमित्त है, वह कोई बन्ध का कारण या कुछ है नहीं; और (3) यह संयोगी निर्मल पर्याय (हो), आत्मा शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द की दृष्टि करने पर निर्मल अवस्था हो, वह उतना सम्बन्ध हुआ; वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? यह संयोगी चीज कोई कारण नहीं; संयोगीभाव बन्ध का कारण है और यह संयोग पर्याय (निर्मल पर्याय) मोक्ष का कारण है। ऐसे स्वयं मोक्ष का कारण है। समझ में आया? यह सामग्री ही स्वयं मोक्ष का कारण है।

मोक्षपाहुड़ है न? कहा न? आइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ। यहाँ शब्द यह पड़ा है। देखो! सुद्धं सुवर्ण-सोना जैसे शुद्धपने को प्राप्त होता है। अग्नि का तो निमित्त है। समझ में आया? शुद्धपने को प्राप्त होता है, सोना शुद्धता को (प्राप्त) होता है, ऐसा। कालाईलद्धीए

अप्या परमप्यओ हवदि इसी तरह आत्मा स्वयं अन्तर काललब्धि, भावलब्धि, शुद्धपर्याय की सामग्री, शुद्धस्वभाव की-भाव की (सामग्री), द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-निमित्त सामग्री, इसके कारण आत्मा स्वयं अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से शुद्धपर्याय की प्राप्ति करता हुआ मुक्ति को पाता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : पत्थर....

उत्तर : हाँ; वह पत्थर था, सोना। सोनावाला पत्थर था, हों! अकेला पत्थर नहीं। वह सोना स्वयं शुद्ध था। देखो न! 'सुद्धं हेमं हवेइ' ऐसा शब्द है न इसमें ? अधिक वजन इसमें है। इसमें यह आ गया - उपादान सामग्री। योग्य उपादान कारण.. यह पाषाण। वह अपनी भी योग्य उपादान की पर्याय का काल है न ? यहाँ क्षणिक पर्याय की बात लेनी है; ध्रुव की बात लेनी नहीं।

यह सोना, वर्तमान में क्षणिक निर्मल पर्याय से परिणमते, उसे अग्नि आदि का निमित्त है। वह सोना स्वयं सौ टंच का हो जाता है। समझ में आया ? वैसे भगवान आत्मा अन्तर शुद्धस्वरूप है। वह स्वयं की निर्मल पर्याय की सामग्री में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अनुकूल बाह्य निमित्त-व्यवहार हो, परन्तु स्वयं के शुद्धस्वभाव की (सामग्रीरूप स्वयं परिणमता है।) क्योंकि एक कारण हो, वहाँ दूसरे कारण होते ही हैं; न हो - ऐसा नहीं है। यह स्वयं के शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और वीतरागता की पर्याय प्रगट हुई तो दूसरे निमित्त आदि के साधन जो हों, वे होते ही हैं; न हो - ऐसा नहीं है। इस कारण स्वयं की सामग्री से मुक्ति को प्राप्त हुआ - ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? इसलिए इसमें - इष्टोपदेश दूसरी गाथा में यह कहा। समझ में आया ? मोक्षपाहुड़ में २४ (वीं) गाथा है।

अब, शंका-इस कथन को सुन.. अब तीसरी गाथा। समझ में आया ? यह यहाँ (मोक्षपाहुड़ में) २५ वीं गाथा है। इस कथन को सुन शिष्य बोला कि भगवन्! यदि अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामग्री के मिलने से ही.. आत्मा की शुद्धभावना-पर्याय और दूसरे निमित्त-द्रव्य, क्षेत्र, काल इत्यादि स्व स्वरूप को प्राप्त कर लेता है,.. आत्मा अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। तब फिर व्रत, समिति आदि का पालन करना निष्फल (निरर्थक) हो जायेगा। अपने आप वह प्राप्त हो जाएगा; फिर यह व्रत,

नियम और यह समिति को यह क्या करना ? व्रत, समिति आदि का पालन निरर्थक होगा । व्रतों का परिपालन कर व्यर्थ में ही शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ ? प्रश्न करता है न ? इसके भाव से - शुद्धभाव से, पर्याय से और उसे अच्छे निमित्त मिलेंगे तो मुक्ति हो जाएगी । यह बीच में फिर व्रत का निमित्त प्राप्त करना - अशुभ टालना और शुभ के व्रत और समिति और ऐसे भाव करना, यह व्यर्थ का कष्ट किसलिए सहन करना ? अपने आप होना होगा, तब होगा ।

समाधान-आचार्य उत्तर देते हुए बोले - हे वत्स ! जो तुमने यह शंका की है कि व्रतादिकों का परिपालन निरर्थक हो जायेगा, सो बात नहीं है,.. यह तो कहने में ऐसा है कि आत्मा का भान-सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुआ, परन्तु स्वरूप की शुद्धता की उग्रता नहीं और उग्रता प्रगट करने का प्रयत्न चाहिए वह नहीं, इससे पहले इसे अव्रत का भाव त्यागकर व्रत का भाव होता है और वह शुभभाव हो, उसके फल में स्वर्ग आदि मिले और शुद्धता के भानसहित यदि अकेले व्रत में रहे तो कदाचित् आयुष्य बँध जाए तो पहले नरक में भी चला जाए । पहले आयुष्य बँध गया होवे तो; बाद में तो न जाए, परन्तु यहाँ तो जरा शुभभाव का जोर देना है । व्रत के शुभभाव का कहना है । पाप के भाव की अपेक्षा शुभभाव (ठीक है), बस ! यह बात, वजन इतना देना है । वरना कहीं सम्यग्दृष्टि-आत्मभानवाला नरक में जाए - यह नहीं होता । उसे होता ही नहीं । उसे पहले आयुष्य बँध गया हो, और फिर समकित हो, वह नरक में जाए, उसकी यहाँ गिनती नहीं है; यहाँ उसकी बात है ही नहीं । उसका काम भी नहीं ।

यहाँ तो आत्मा का सम्यक् चैतन्य शुद्ध भान है; अब उसे आगे शुद्धता की पूर्णता - चरित्र आदि की प्राप्त (होने के) पुरुषार्थ में विलम्ब है, उसके भाव की योग्यता को भी विलम्ब है और यह सब अनुकूल निमित्त-संहनन आदि को विलम्ब है । उससे पहले अव्रत की अपेक्षा;... अव्रत करनेवाला तो पाप बाँधकर नरक में जाए ऐसा । पाप बाँधे । व्रत के भाव हों तो वह स्वर्ग में जाए । इसका अर्थ ऐसा भी है कि व्रत के भाव हों, तब वहाँ अन्दर शुद्धि की वृद्धि भी थोड़ी होती है । समझ में आया ? अव्रत के काल में सम्यग्दृष्टि की जितनी शुद्धि है, उसकी अपेक्षा जब व्रत के परिणाम हों, तब उसे अन्दर में शुद्धि की

वृद्धि होती है। उसकी यहाँ मुख्यता न गिनकर, उस व्रत का परिणाम स्वर्ग है, उसकी यहाँ बात कहने में आती है। समझ में आया ?

कहते हैं, भाई! व्रतादिकों का परिपालन निरर्थक हो जायेगा, सो बात नहीं है,.. ऐसा कहते हैं। समझे न? कारण कि वे व्रतादिक नवीन शुभकर्मों के बन्ध के कारण होने से,.. ये व्रतादि, समिति शुभभाव है, वह पुण्य बंधन का कारण है। व्रत, समिति का भाव शुभ है; अव्रत, असमिति का भाव अशुभ और पाप है – इतनी बात लेनी है, इतनी अपेक्षा लेनी है। समझ में आया? व्रतादिक नवीन शुभकर्मों के बन्ध के कारण होने से, तथा पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों के एकदेश क्षय के कारण होने से... पूर्व में बाँधा हुआ जो पाप, उसका एक अंश क्षय होता है। सकल एवं सार्थक हैं। अव्रत के परिणाम की अपेक्षा शुभभावरूपी व्रत, समिति का सार्थकपना है। नया पुण्य बँधता है, पुराने पाप का आंशिक क्षय होता है; इतना उसमें सार्थकपना गिनने में आता है। समझ में आया ?

इतना ही नहीं किन्तु व्रतसम्बन्धी अनुरागलक्षणरूप शुभोपयोग होने से पुण्य की उत्पत्ति (नयी) होती है। समझ में आया ? और वह पुण्य स्वर्गादिक पदों की प्राप्ति के लिये निमित्तकारण होता है। उस सम्यग्दृष्टि को जो पुण्यभाव होता है, वह स्वर्ग में जाने का निमित्तकारण होता है। कहो, समझ में आया ? इसलिए भी व्रतादिकों का आचरण सार्थक है। इसी बात को प्रगट करने के लिये आचार्य आगे श्लोक कहते हैं।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाऽव्रतैर्वत नारकम्।

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥३॥

अर्थ – व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है, किन्तु अव्रतों के द्वारा नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। जैसे छाया और धूप में बैठनेवालों में अन्तर पाया जाता है, वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करनेवालों में फर्क पाया जाता है।

विशदार्थ – अपने कार्य के वश से नगर के भीतर गये हुए तथा वहाँ से वापिस

आनेवाले अपने तीसरे साथी की मार्ग में प्रतीक्षा करनेवाले जिनमें से एक तो छाया में बैठा हुआ है, और दूसरा धूप में बैठा हुआ है - दो व्यक्तियों में जैसे बड़ा भारी अन्तर है, अर्थात् छाया में बैठनेवाला तीसरे पुरुष के आने तक सुख से बैठा रहता है, और धूप में बैठनेवाला दुःख के साथ समय व्यतीत करता रहता है। उसी तरह जब तक जीव को मुक्ति के कारणभूत अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिक प्राप्त होते हैं, तब तक व्रतादिकों का आचरण करनेवाला स्वर्गादिक स्थानों में आनन्द के साथ रहता है। दूसरा व्रतादिकों को न पालता हुआ असंयमी पुरुष नरकादिक स्थानों में दुःख भोगता रहता है। अतः व्रतादिकों का परिपालन निरर्थक नहीं, अपितु सार्थक है।

दोहा - मित्र राह देखत खड़े, इक छाया इक धूप।
व्रतपालन से देवपद, अव्रत दुर्गति कूप॥३॥

शंका - यहाँ पर शिष्य पुनः प्रश्न करता हुआ कहता है- 'यदि उपरिलिखित कथन को मान्य किया जायगा, तो चिद्रूप आत्मा में भक्ति भाव (विशुद्ध अंतरंग अनुराग) करना अयुक्त ही हो जायगा? कारण कि आत्मानुराग से होनेवाला मोक्षरूपी सुख तो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिरूप सम्पत्ति की प्राप्ति की अपेक्षा रखने के कारण बहुत दूर हो जायगा और बीच में ही मिलनेवाला स्वर्गादि-सुख व्रतों के साहाय्य से मिल जायगा। तब फिर आत्मानुराग करने से क्या लाभ? अर्थात् सुखार्थी साधारण जन आत्मानुराग की ओर आकर्षित न होते हुए व्रतादिकों की ओर ही अधिक झुक जायेंगे।'

समाधान - शंका का निराकरण करते हुए आचार्य बोले, 'व्रतादिकों का आचरण करना निरर्थक नहीं है।' (अर्थात् सार्थक है) इतनी ही बात नहीं किन्तु आत्म-भक्ति को अयुक्त बतलाना भी ठीक नहीं है। इसी कथन की पुष्टि करते हुए आगे श्लोक लिखते हैं -॥३॥

गाथा - ३ पर प्रवचन

वरं व्रतैः पदं दैवं नाऽव्रतैर्वत नारकम्।

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥३॥

समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने भी २५ वें श्लोक में कहा है, भाई! संसार में

व्रत और तप से स्वर्ग होता है वह श्रेष्ठ है और परन्तु अव्रत और अतप से प्राणी को नरकगति में दुःख होता है, वह मत होवे, श्रेष्ठ नहीं है। वहाँ अन्दर यह शब्द प्रयोग किया है। पाठ में ही प्रयोग होता है, हों!

वर वयतवेहि सगो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।

छायातवट्टियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं॥२५॥

व्रत और तप से स्वर्ग होता है वह श्रेष्ठ है... नरक की अपेक्षा से बात है, हों! परन्तु अव्रत और अतप से प्राणी को नरकगति में दुःख होता है, वह मत होवे, श्रेष्ठ नहीं है। किसकी तरह? छाया और आतप में बैठनेवाले के प्रतिपालक कारणों से बड़ा भेद है। इसमें यही दृष्टान्त है, हों! यही दृष्टान्त दिया, इसमें जैसा दृष्टान्त है, उसमें वही है। यही गाथा ली है। देखो! इसमें अपने चलता अर्थ।

अर्थ - व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है,... यह आत्मा के भानपूर्वक यदि व्रत हों, तब तो उसे शुद्धि की वृद्धि भी अन्दर हुई है और व्रत के परिणाम से उसे स्वर्ग मिलता है। किन्तु अव्रतों के द्वारा नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है... यह अशुभ से शुभ की विशेषता व्यवहार से बतलाने की यह व्याख्या है। समझ में आया? आत्मा के भान बिना अकेले व्रत आदि पालन करे, यह तो वह पुण्यबन्ध हो। उसमें उसे कोई आत्मा के जन्म-मरण का अन्त नहीं आवे। समझ में आया?

आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द की दृष्टि और अनुभव बिना जो व्रत आदि के परिणाम करे, उसे आत्मा का कुछ लाभ नहीं; स्वर्ग आदि मिले, जाए उसमें। यह तो आगे कहेंगे। पहले तो जरा-सा ठीक कहेंगे, फिर कहेंगे - यह तो वासना का दुःख है। स्वर्ग में सुख कहा, वहा तो अपेक्षा कहा था, वरना वहाँ तो सुख की भ्रमणा है; वहाँ कोई सुख-बुख है नहीं।

कहते हैं जैसे छाया और धूप में बैठनेवालों में अन्तर पाया जाता है,... जैसे छाया में एक बैठा हो और एक धूप में - तड़के में बैठा हो; वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करनेवालों में फर्क पाया जाता है। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं, हों! स्पष्ट कहते हैं।

विशदार्थ – अपने कार्य के वश से नगर के भीतर गये हुए तथा वहाँ से वापिस आनेवाले अपने तीसरे साथी की मार्ग में प्रतीक्षा करनेवाले... दो मनुष्य गाँव के बाहर निकले, दो। अब तीसरा, अभी गाँव में है। उसकी राह देखकर बाहर दो व्यक्तियों को बैठना है। एक व्यक्ति धूप में खड़ा रहता है, उस तीसरे से मिलने के लिये; एक व्यक्ति, जरा दूर बड़ है, बड़, मार्ग से थोड़ा दूर है, थोड़ा चलना पड़ता है। पहला धूप में खड़ा रहता है, उसकी अपेक्षा एक बड़ के नीचे मील दूर, आधे मील दूर वड़ है, वहाँ चलकर बैठना पड़े, परन्तु वह तीसरा आवे, तब तक दोनों को खड़ा रहना (पड़े)। एक धूप में खड़ा रहता है और एक छाया में खड़ा रहता है, मिलना तो है उससे-तीसरे से-शुद्धोपयोग से। समझ में आया ?

आत्मा में शुद्धोपयोग हो, तभी मुक्ति होती है। तब उसकी चारित्रदशा (होती है); उस बिना मुक्ति नहीं होती, परन्तु उस शुद्धोपयोग की प्राप्ति का जब तक उसे काल न आवे, तब तक सम्यग्दृष्टि, यदि शुभभाव में हो तो उसे स्वर्ग की छाया में बैठा कहने में आता है और अशुभराग में हो तो वह दुःख के स्थान में खड़ा रहा कहने में आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : दोनों मिले नहीं ?

उत्तर : परन्तु मिलें कब ? उनमें एक खड़ा है छाया में; और एक धूप में (खड़ा है) – ऐसा कहते हैं। इतना शुभ-अशुभ में अन्तर डालना है न ? वह जरा धूप में सिकता है और वह छाया में बैठता – इतना यहाँ बताना है। फर्क बताना है न ? समझ में आया ? मिलना तो है उससे। शुद्धोपयोग के बिना आत्मा को चारित्र और शान्ति और मोक्ष तीन काल में नहीं है परन्तु आत्मा का दर्शन हुआ – सम्यग्दर्शन का भान, शुद्धता का भान (हुआ); (तत्पश्चात्) एक मनुष्य अशुभ में रहा करे तो उसे प्रतिकूल स्थान में अवतरित होना पड़ेगा। समझ में आया ? और शुभभाव में रहे तो उसे उसमें से पुण्य स्थान में-स्वर्ग आदि में जाए, वहाँ रहेगा – इतना पाप की अपेक्षा पुण्य के स्थान में फर्क व्यवहार से करने की बात बताते हैं। समझ में आया ?

अपने कार्य के कारण... आया न ? एक तो छाया में बैठा हुआ है, और दूसरा धूप में बैठा हुआ है – दो व्यक्तियों में जैसे बड़ा भारी अन्तर है, अर्थात् छाया में

बैठनेवाला तीसरे पुरुष के आने तक सुख से बैठा रहता है,... तीसरा जब तक न आवे, तब तक छाया में बैठा है। और धूप में बैठनेवाला दुःख के साथ समय व्यतीत करता है। लो! समझ में आया? धूप में बैठा है, उसे जरा आताप का दुःख है। व्यवहार से जरा अन्तर डालना है, हाँ! अशुभभाव की अपेक्षा शुभभाव में पुण्य है, उसे स्वर्ग की-बाहर की सुविधा है-इतना फर्क जरा बताना है, वरना वास्तव में तो वहाँ (भी) दुःख है - ऐसा कहेंगे। स्वर्ग में भी दुःख ही है, वहाँ कोई सुख-बुख है नहीं, परन्तु बाहर की अमुक सुविधा की अपेक्षा से उसे नरक के दुःख की अपेक्षा सुख की व्याख्या व्यवहार से की है। समझ में आया?

उसी तरह जब तक जीव को मुक्ति के कारणभूत.. मुक्ति के कारण-योग्य अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिक प्राप्त होते हैं,.. अपने शुद्ध उपयोग की परिणति की प्राप्ति जब तक न हो, शुद्धोपयोग की विशेष उग्र (परिणति) और उस जाति के निमित्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, आदि नहीं मिलें। तब तक व्रतादिकों का आचरण करनेवाला स्वर्गादिक स्थानों में आनन्द के साथ रहता है। देखो! अभी व्यवहार की बात की है, हों! फिर इसे दुःख कहेंगे। समझ में आया? दो की अपेक्षा से बात है। पाप की अपेक्षा (पुण्य में) जरा-सा वहाँ (व्यवहार से अन्तर/फर्क बताते) हैं।

दूसरा व्रतादिकों को न पालता हुआ असंयमी पुरुष... सम्यग्दृष्टि तो होने पर भी, अशुभभाव में रहते रहने की अपेक्षा शुभभाव में ठीक है, व्रतादि की व्याख्या करनी है। समझ में आया? परन्तु उसमें व्रतादि आवे, तब आत्मा का पुरुषार्थ (और) उग्र शान्ति होती है। पाँचवें गुणस्थान में आत्मा की शान्ति (और) अन्तर आनन्द की वृद्धि हो गयी होती है। सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में आत्मा के आनन्द का आंशिक वेदन हो गया; पाँचवें में व्रत के विकल्प जब हों, तब वास्तव में तो शान्ति का आनन्द बढ़ गया होता है। पाँचवें गुणस्थान में दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव है। सर्वार्थसिद्धि के देव से भी उसकी शान्ति (अधिक है)। उसे श्रावक कहते हैं और उसे व्रत व्यवहार से कहने में आते हैं। समझ में आया? आत्मा की शान्ति की छाया में तो गया है, परन्तु शान्ति की उग्रता की छाया जो शुद्धोपयोग की चाहिए, वह अभी है नहीं।

पुरुषार्थ की कचाश है, उसके कारण कहते हैं कि भाई! अशुभभाव में रहने की

अपेक्षा व्रतादि समिति का शुभभाव हो, तो उसके प्रमाण में वहाँ शुद्धि की वृद्धि भी है और शुभभाव में मरकर स्वर्ग आदि में रहेगा। समझ में आया? व्यवहार की बात है, भाई! नहीं तो आगे तो कहेंगे, इसी में कहेंगे (कि) स्वर्ग में क्लेश है, उस पुण्य के फल में; जैसे गर्म घी डाले, गर्म घी! एक को अग्नि जलाये और एक को गर्म घी घांटे, दोनों जलनेवाले हैं, दोनों जलते हैं। यह दो के बीच - पुण्य और पाप के बीच की मात्र व्याख्या बताते हैं। दर्शनशुद्धि की बात तो इससे अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? स्वर्गादिक स्थानों में आनन्द के साथ रहता है, दूसरा व्रतादिकों को न पालता हुआ असंयमी पुरुष नरकादिक स्थानों में दुःख भोगता रहता है। अतः व्रतादिकों का परिपालन निरर्थक नहीं, अपितु सार्थक है।

इसमें (मोक्षपाहुड़ की २५ वीं गाथा में) भी कहा है। देखो! यह शब्द है - जैसे छाया का कारण वृक्षादिक है, उनकी छाया में जो बैठे वह सुख पावे और आताप का कारण सूर्य, अग्नि आदि है इनके निमित्त से आताप होता है जो उसमें बैठता है, वह दुःख को प्राप्त करता है, इनमें बड़ा भेद है। इस प्रकार ही जो व्रत, तप का आचरण करता है, वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है और जो इनका आचरण नहीं करता, विषय-कषायादिक का सेवन करता है, वह नरक के दुःख को प्राप्त करता है, इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है। इसलिए यहाँ कहने का यह आशय है कि जब तक निर्वाण न हो, तब तक व्रत-तप आदिक में प्रवर्तना श्रेष्ठ है... जब तक सिद्धपद की प्राप्ति, चारित्र की उग्र पुरुषार्थ की (प्राप्ति) न हो, तब तक सम्यग्दृष्टि को अशुभ छोड़कर शुभव्रत में आना, इतनी बात है। समझ में आया?

इससे सांसारिक सुख की प्राप्ति है और निर्वाण के साधने में भी ये सहकारी हैं। विषय कषायादिक की प्रवृत्ति का फल तो केवल नरकादिक के दुःख हैं, उन दुःखों के कारणों का सेवन करना यह तो बड़ी भूल है, लो! कहो, समझ में आया? यह तो रात्रि को, उस नरक का शब्द है न? उसमें है या नहीं - इसके लिये देखा, भाई! इसमें 'नरक' शब्द पड़ा है न? यह मूल में इसमें भी मूल में है। इसमें तो है परन्तु इसमें भी मूल में है। मैंने तो (इसके लिये देखा कि) इसमें 'नरक' (शब्द) मूल में है या नहीं? मूल में शब्द सब एक प्रकार के हैं। व्यवहार कहते हैं न! देखो! दोहा।

दोहा - मित्र राह देखत खड़े, इक छाया इक धूप।
व्रतपालन से देवपद, अव्रत दुर्गति कूप॥३॥

मित्र राह देखत खड़े,.. दो मित्रों में, एक मित्र जो नगर में से आया नहीं, उसमें दूसरे दो मित्र हैं, वे खड़े हैं। एक छाया में और एक धूप में खड़ा है। व्रतपालन से देवपद,.. वैसे शुद्धोपयोग की रमणता-उग्रपना जब तक न आवे, तब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक व्रत के शुभभाव, अव्रत की अपेक्षा से स्वर्ग की छाया, जैसी छाया कही ऐसी स्वर्ग के सुख की छाया कहने में आते हैं। अव्रत दुर्गति कूप। अव्रतभाव-पापभाव तो दुर्गति का कुआँ है। पाप से तो दुर्गति होती है। समझ में आया ?

शंका - यहाँ पर शिष्य पुनः प्रश्न करता हुआ कहता है - 'यदि उपरलिखित कथन को मान्य किया जायेगा...' अब कहते हैं, देखो! तो चिद्रूप आत्मा में भक्ति भाव (विशुद्ध अंतरंग अनुराग) करना अयुक्त ही हो जायेगा? तो इस शुद्ध चिद्रूप भगवान आत्मा में रुचि और रमणता करना तो व्यर्थ चला जाएगा, वह तो निरर्थक हो जाएगा। क्या कहा, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

उत्तर : तथापि व्रत ही पालेगा और आत्मा में शुद्ध चैतन्यदृष्टि और अनुभव तो करेगा नहीं। ऐसी बात है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यरूप, जिसकी दृष्टि में शुद्धता भासे और आत्मा के अनुभव की भक्ति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तुम ऐसे व्रत का वजन दोगे तो फिर आत्मा की भक्ति करेगा कौन ? ऐ..ई.. !

चिद्रूप आत्मा में भक्ति भाव (विशुद्ध अंतरंग अनुराग)... चैतन्य भगवान आत्मा पवित्र आनन्दकन्द है, उसमें अन्तर में एकाग्रता किस प्रकार होगी ? तुम तो, व्रत के परिणाम के फल में स्वर्ग मिलेगा - ऐसा कहते हो। भगवान आत्मा अन्तर शुद्ध चैतन्य प्रभु का अनुभव दृष्टि और अनुभव का भाव होना, वही धर्म है; तो वह धर्म करेगा कौन ? - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहा...हा... ! धर्म तो वह है। यह (व्रत) तो पुण्यबन्ध का कारण है। व्रत का भाव, पुण्य है और अव्रत का (भाव) पाप है।

यह भगवान आत्मा.... ! देखो ! टीका में है या नहीं ? पीछे है न ? सत्यात्मनि चिद्रूपे

भक्तिर्भावविशुद्ध आन्तरोऽनुरागो अयुक्ता... है, देखो! संसारसुखे सिद्धे सत्यात्मनि चिद्रूपे भक्तिर्भावविशुद्ध आन्तरोऽनुरागो अयुक्ता... है न अन्दर ? इस तरफ है, चौथे पृष्ठ पर है। समझ में आया ? यहाँ तो विवेक बताना है कि व्रत के परिणाम तो शुभराग है। यदि उसमें ही रुक जाएगा तो इस भगवान आत्मा की भक्ति (अर्थात्) शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु निर्विकल्प आनन्द की श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान और चारित्र करेगा कौन ? - ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया। करने का तो यह है। समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन में आगे शुद्धता बढ़ने पर उसे व्रत के परिणाम आते अवश्य हैं, होते अवश्य हैं, परन्तु यह न हो तो ये अकेले व्रत के परिणाम क्या करें ? समझ में आया ? उन्हें सहकारी निमित्त भी नहीं कहा जाता। पुण्य को सहकारी कहा था न ? आत्मा अपने शुद्धस्वरूप निर्विकल्प आनन्द की निर्विकल्प दृष्टि के अनुभव की भक्ति के बिना उसके अकेले व्रत तो निमित्त-सहकारी भी नहीं कहलाते। समझ में आया ? आहा...हा... !

चिद्रूप आत्मा... ! फिर भाषा कैसी है ? चिद्रूप आत्मा। अर्थात् उन व्रत के विकल्परूप आत्मा नहीं। समझ में आया ? व्रत के परिणाम तो शुभराग है, वह आत्मा नहीं; अव्रत के परिणाम, पाप है, वह आत्मा नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? चिद्रूप आत्मा ! वह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा है। ज्ञान, उसमें यह पुण्य का विकल्प, वह बन्ध का कारण है; पाप का विकल्प, बन्ध का कारण है; वह आत्मा नहीं। तुमने तो आत्मा-अनात्मा की बात की। आत्मा चिद्रूप भगवान में एकाग्र होना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। उसका नाम ही मोक्ष का मार्ग है। जबकि तुम यहाँ व्रत का, स्वर्ग का वजन दोगे तो यह करेगा कौन ? समझ में आया ?

करना अयुक्त ही हो जायेगा ? मूल करने का तो यह है। अन्तर ज्ञानानन्द भगवान आत्मा में लीन दृष्टि-ज्ञान में निर्विकारी शुद्धि, आनन्द की वृद्धि करना, यही करने का है; यही मोक्ष का मार्ग और यही संवर-निर्जरा है। समझ में आया ? कारण कि आत्मानुराग से होनेवाला... देखो ! आत्मानुराग (कहा है)। अनुराग अर्थात् भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु से अनुराग अर्थात् एकाग्रता से। अनुराग शब्द से इसमें एकाग्रता (कहना) है।

होनेवाला मोक्षरूपी सुख तो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिरूप सम्पत्ति की

प्राप्ति की अपेक्षा रखने के कारण बहुत दूर हो जायेगा... समझ में आता है ? मोक्षरूपी सुखी तो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिरूप सम्पत्ति की प्राप्ति की अपेक्षा रखने के कारण बहुत दूर हो जायेगा और बीच में ही मिलनेवाला स्वर्गादि-सुख व्रतों के साहाय्य से मिल जायेगा। तब फिर आत्मानुराग करने से क्या लाभ ? वह सुख तो कब मिले और यह स्वर्ग का सुख तो तुरन्त मिलेगा। फिर यह सिरपच्ची करना - आत्मा के ध्यान की और शुद्ध चैतन्य की... कौन करेगा ? उससे क्या लाभ ? समझ में आया ?

अर्थात् सुखार्थी साधारणजन आत्मानुराग की ओर आकर्षित न होते हुए व्रतादिकों की ओर ही अधिक झुक जायेंगे। समझ में आया ? जब तुमने इतना अधिक कहा (कि) व्रत से स्वर्गसुख मिलता है और वहाँ फिर आनन्द में रहता है और छाया में रहता है; फिर तो इस-आत्मा की भक्ति शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि का अनुभव करेगा कौन ? देखो ! सुखार्थी साधारणजन। यह तो साधारण बात करनी है, हों ! मिथ्यादृष्टि की। समकिति को सुख का (प्रश्न नहीं होता।) सामान्य बात है।

सुखार्थी साधारणजन आत्मानुराग... भगवान आत्मा पवित्रधाम प्रभु, सिद्ध समान अपना पद है। उसमें आनन्द में लीन होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। वह कौन करेगा ? आकर्षित कौन होगा ? वहाँ व्रत में अटक जाएगा - ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया ? आत्मानुराग की ओर... अनुराग तो कहीं (वह तो) व्रत में चला जाएगा। ऐसे पालना और ऐसे पालना और ऐसे पालना, व्रत पालना... वह तो शुभराग है, पुण्य बन्ध का कारण है; वह कोई धर्म-वर्म - परमार्थ मुक्ति का उपाय नहीं है। मुक्ति का उपाय तो आत्मा के अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान का अन्तर अनुभव करना, उसमें आकर्षित (होना), उसका नाम मोक्ष है। आत्मानुभव की ओर आकर्षित न होकर, व्रतादि की ओर अधिक झुक जाता है। कहो, बसन्तलालजी ! यह पहले जो कहा था, वही सब लिखा है न ? आत्मा निर्विकल्प आनन्द कौन है, (वह) पड़ा रहा। व्रत पालो, समिति पालो, ऐसा करो, ऐसा करो - यह तो राग है। शुभराग में आत्मा पूरा पड़ा रहा। शुद्ध चिदानन्द प्रभु निर्विकल्प आत्मा की अन्तर्दृष्टि के अनुभव बिना संवर-निर्जरा शुरु नहीं होती। संवर-निर्जरा तीन काल में नहीं होती। यह तो पुण्य-बन्ध के कारण की व्याख्या है।

मुमुक्षु :

उत्तर : यह सब सामान्यजन हैं। कहो, समझ में आया ?

समाधान - यहाँ तो साधारण व्याख्या करनी है न! सम्यग्दृष्टि को तो भान है कि जब तक मेरी शुद्धता पूर्ण न हो... समझ में आया ? तब तक ऐसा शुभभाव, अशुभ से बचने के लिए होता है, अशुभ से बचने को शुभभाव होता है। उसे यहाँ उपदेश में विशेष नरक के पाप के (परिणाम) की अपेक्षा ऐसे (शुभ) परिणाम हों (तो वे) ठीक हैं - ऐसा कहने में आता है, परन्तु अकेला वहाँ वजन कोई दे दे (और) आत्मा पूरा रह जाये, तब तो हो गया। करने का तो वह है, वह तो रह जायेगा। व्रत का सुखार्थी (मानेगा कि) यह व्रत पालन कर स्वर्ग में जाऊँगा और फिर वहाँ रहूँगा, फिर धीरे-धीरे भविष्य में धर्म हो जायेगा। उसका समाधान करते हैं। देखो!

शंका का निराकरण करते हुए आचार्य बोले, व्रतादिकों का आचरण करना निरर्थक नहीं है (अर्थात् सार्थक है) इतनी ही बात नहीं किन्तु आत्मभक्ति को अयुक्त बतलाना भी ठीक नहीं है। दोनों बातें हैं। व्रत के परिणाम अशुभ से ठीक है, वह भी निरर्थक नहीं है और आत्मा की अन्तर में शुद्ध श्रद्धा आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव, वह अयुक्त नहीं है; युक्त है। वही वास्तव में तो युक्त है। करने जैसा तो वह है। देखो! आत्मभक्ति। देखो! आत्मभक्ति का अर्थ निश्चय सम्यग्दर्शन। आहा..हा..! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शान्तरस का कन्द प्रभु की अन्तर एकाग्रता की भक्ति-आनन्द (होना), वह निश्चय सम्यग्दर्शन; अन्तर आत्मा का ज्ञान, निश्चयज्ञान; (और) आत्मा में लीनता-वीतरागता (होवे, वह) निश्चय चारित्र - इसका नाम आत्मभक्ति कहने में आता है। समझ में आया ?

गुरु-देव-शास्त्र की भक्ति, वह व्यवहार भक्ति है; यह निश्चय भक्ति है। भक्ति के दो प्रकार। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति तो परद्रव्य की भक्ति के ऊपर का लक्ष्य है, वह तो शुभभाव, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान आत्मा की भक्ति, वह संवर-निर्जरा और शुद्धता का कारण है। समझ में आया ?

आत्म-भक्ति को अयुक्त बतलाना भी ठीक नहीं। दोनों बात (की है) और

सम्यग्दृष्टि सहित अशुभ टलकर शुभ आवे, व्रत हो, उसे भी अयुक्त कहना, यह भी ठीक नहीं है। समझ में आया? इसी कथन की पुष्टि करते हुए आगे श्लोक लिखते हैं। लो! चौथा। यह भी इसमें है, हों! चौथी है न? उसमें २१ है, 'मोक्षपाहुड़' में २१ है।

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।

यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्थं किं स सीदति॥४॥

अर्थ - आत्मा में लगा हुआ जो परिणाम भव्य प्राणियों को मोक्ष प्रदान करता है, उस मोक्ष देने में समर्थ आत्मपरिणाम के लिये स्वर्ग कितनी दूर है? न कुछ, वह तो उसके निकट ही समझो। अर्थात् स्वर्ग तो स्वात्मध्यान से पैदा किये हुए पुण्य का एक फलमात्र है। ऐसा ही कथन अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। तत्त्वानुशासन में कहा है :- 'गुरुपदेशमासाद्य'

'गुरु के उपदेश को प्राप्त कर सावधान हुए प्राणियों के द्वारा चिन्तवन किया गया यह अनन्त शक्तिवाला आत्मा चिन्तवन करनेवाले को मुक्ति और भुक्ति प्रदान करता है। इस आत्मा को अरहंत और सिद्ध के रूप में चिन्तवन किया जाय तो यह चरमशरीरी को मुक्ति प्रदान करता है और यदि चरमशरीरी न हो तो उसे वह आत्म-ध्यान से उपार्जित पुण्य की सहायता से भुक्ति (स्वर्ग चक्रवर्त्यादिके भोगों) को प्रदान करनेवाला होता है।'

श्लोक की नीचे की पंक्ति में उपरलिखित भाव को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं- देखो जो भार को ढोनेवाला अपने भार को दो कोस तक आसानी और शीघ्रता के साथ ले जा सकता है, तो क्या वह अपने भार को आधा कोस ले जाते हुए खिन्न होगा? नहीं। भार को ले जाते हुए खिन्न न होगा। बड़ी शक्ति के रहने या पाये जाने पर अल्प शक्ति का पाया जाना तो सहज (स्वाभाविक) ही है।

दोहा - आत्मभाव यदि मोक्षप्रद, स्वर्ग है कितनी दूर।

दोय कोस जो ले चले, आध कोस सुख पूर॥४॥

इस प्रकार से आत्म-शक्ति को जब कि स्वर्ग-सुखों का कारण बतला दिया गया, तब शिष्य पुनः कुतूहल की निवृत्ति के लिये पूछता है कि 'स्वर्ग में जानेवालों को क्या फल मिलता है?'॥४॥

गाथा - ४ पर प्रवचन

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्थे किं स सीदति॥४॥

अर्थ - आत्मा में लगा हुआ जो परिणाम... देखो! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप में लगा हुआ परिणाम-निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो निश्चयस्वभाव में लगा हुआ परिणाम भव्य प्राणियों को मोक्ष प्रदान करता है,... भव्य जीव को वह परिणाम, मोक्ष की प्राप्ति का कारण है और मोक्ष प्राप्त करता है। समझ में आया? उस मोक्ष देने में समर्थ आत्मपरिणाम के लिये... देखो! भगवान आत्मा अपने निर्विकल्प वीतरागी परिणाम से मोक्ष को प्राप्त करे, ऐसे वीतरागी परिणाम के लिये स्वर्ग कितनी दूर है? उसे स्वर्ग कितनी दूर है? न कुछ। बीच में स्वर्ग तो उसे मिलता ही मिलता है। सो कल्थी अनाज होवे तो सौ गाड़ी घास होती ही है, घास होती है। पुण्य तो घास है। खड़ को (हिन्दी में) क्या कहते हैं? घास-फूस... घस-फूस जहाँ सौ गाड़ी अनाज हो सौ खांडी.. सौ खांडी.. सौ खांडी.. अनाज (हो), वहाँ सौ गाड़ी घास-फूस तो होती ही है; ऐसे ही जहाँ आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान शान्ति (हुए) अन्तर स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान की रमणता में मोक्ष हो, वहाँ बीच में स्वर्ग तो साधारण आवे ही, वह (ऐसा) कहते हैं। सुन न! वह तो साथ में पुरुषार्थ का ऐसा विकल्प ऐसा होता ही है - ऐसा कहते हैं, हों! आत्म परिणाम से कहते हैं परन्तु परिणाम की भूमिका में ऐसा विकल्प होता है। समझ में आया?

स्वर्ग कितनी दूर है? जो! मोक्ष देने में समर्थ आत्मपरिणाम के लिये स्वर्ग कितनी दूर है? न कुछ, वह तो उसके निकट ही समझो। अर्थात् स्वर्ग तो स्वात्मध्यान से पैदा किये हुए पुण्य का एक फलमात्र है। यह आत्मध्यान में पैदा किया हुआ (अर्थात्) जरा सा विकल्प बाकी रहा न थोड़ा? वह स्वर्ग तो उसके पुण्य का एक फल है। ऐसा ही कथन अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। तत्त्वानुशासन में कहा है:- 'गुरुपदेशमासाद्य'। लो! समझ में आया? यह तत्त्वानुशासन की १९६ गाथा है। तत्त्वानुशासन है न!

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनन्तशक्तिरात्माऽयं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति॥१९६॥

सम्यक् गुरु के उपदेश को प्राप्त.. देखो! भाषा यह है। सम्यग्ज्ञानी का उपदेश ऐसा होता है कि आत्मा के शुद्ध धर्म का ध्यान करके शुभराग हो, ऐसा उसे पहला उपदेश होता है। सम्यग्ज्ञानी है न? अष्टपाहुड़ में है, हाँ! यह गुरुपदेशमासाद्य शब्द है न? श्लोक है। अंदर पूरा श्लोक है, देखो! इसमें श्लोक है। गुरु के उपदेश को प्राप्त कर सावधान हुए... विशिष्टता तो यह है कि गुरु का उपदेश मुख्य ऐसा होता है कि प्राणियों के द्वारा चिन्तवन किया गया यह अनन्त शक्तिवाला आत्मा... गुरु ऐसा कहते हैं और ऐसा बताते हैं कि तू आत्मा का ही ध्यान कर, श्रद्धा, अनुभव कर। यह उनका उपदेश है। इससे मुक्ति और इससे संवर-निर्जरा हो—ऐसा गुरु का उपदेश ही ऐसा होता है। यह तत्त्वानुशासन है। यह तत्त्वानुशासन की गाथा है। कौन है? नागसेनमुनि है न? नागसेनमुनि। १९६। इसमें क्रमांक नहीं, इसमें १९६ है, देखो!

सम्यक् गुरु के उपदेश को प्राप्त हुए एकाग्र ध्यान मुक्त के द्वारा ध्यान किया जाता हुआ अनन्त शक्तियुक्त अर्हण आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता है। मुक्ति और भुक्ति। राग बाकी रहे उसे भुक्ति-स्वर्ग मिलेगा... संवर और निर्जरा-अन्दर शुद्ध भगवान आत्मा की निर्विकल्प दृष्टि और ध्यान किया, उससे मुक्ति मिलेगी। कहो समझ में आया? यहाँ अरहन्तरूप आत्मध्यान के बल से मुक्ति और भुक्ति की प्राप्ति होती है - ऐसा सूचित किया गया है। जिसको मुक्ति की और जिसको भुक्ति की प्राप्ति होती है, वह आगे बतलायेंगे। यह तो अरहन्त और सिद्ध का ध्यान कहते हैं। आगे व्याख्या की है। ठीक है, कहो, समझ में आया इसमें?

देखो! यहाँ क्या (कहते) हैं? गुरु के उपदेश को प्राप्त कर... वजन यहाँ है। तत्त्वानुशासन (के रचयिता) नागसेनाचार्य हुए हैं। सावधान हुए... गुरु ने इसे ऐसा कहा, ऐसा बताया कि तेरा आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध है, इसका ध्यान कर, उसमें सावधान हो; पुण्य-पाप के परिणाम की सावधानी छोड़ दे। आ...हा...! समझ में आया?

दिगम्बर सन्त या दिगम्बर मुनि या केवलज्ञानी परमात्मा-धर्मात्मा जो सन्त-मुनि सच्चे हों अथवा सच्चे गुरु हों तो उनका उपदेश यही है कि आत्मा में सावधान होओ। पुण्य-पाप का विकल्प है, वह तो राग-राग है। रागरहित तेरी चीज शुद्ध चिदानन्द है,

उसमें दृष्टि लगा। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... उसमें सावधान हो, यह उपदेश भगवान सन्तों का, गुरुओं का, मुनियों का यह उपदेश है। समझ में आया ?

गुरु के उपदेश को प्राप्त कर सावधान हुए प्राणियों के द्वारा... सावधान हुए प्राणियों द्वारा। जो आत्मा गुरु का उपदेश सुनकर (सावधान हुए) और वह उपदेश उन्होंने किया कि भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्प और देह-वाणी से रहित—ऐसे शुद्ध प्रभु में तू ध्यान कर तो वह तेरा मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? ऐसे प्राणियों द्वारा चिन्तवन किया गया... कहीं गुरु द्वारा चिन्तवन किया गया नहीं, कहते हैं। वह चिन्तवन तो इसने किया। उपदेश (गुरु ने) दिया... अन्तर भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का लक्ष्य कर, उसका ध्यान कर, उसकी दृष्टि, ज्ञान और लीनता कर।

ऐसे प्राणियों द्वारा चिन्तवन किया गया यह अनन्त शक्तिवाला आत्मा,... देखो ! भगवान आत्मा तो अनन्त शक्तिवाला है। अनन्त-अनन्त शक्ति है। एक-एक गुण की अनन्त शक्ति, ऐसी अनन्त गुण की शक्तिसम्पन्न प्रभु आत्मा है। जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त स्व-संवेदता—ऐसे अनन्त-अनन्त गुण जिसमें - आत्मा में पड़े हैं। ऐसे शक्तिवाले आत्मा का चिन्तवन करनेवाले को, ऐसे आत्मा की एकाग्रता करनेवाले को। 'चिन्तवन' शब्द से एकाग्रता। अकेले (विचार, विकल्प) नहीं। ऐसा। **भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है।** लो ! ध्यान करते-करते किंचित थोड़ा राग बाकी रह जाय तो उससे भुक्ति... भुक्ति (अर्थात्) स्वर्ग का सुख (मिलता है)। ॐकार में भी आता है न ? 'ॐ कार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनम् कामदं मोक्षदं चैव...' वहाँ भी दोनों बातें ली हैं। 'कामदं' जरा राग बाकी राग रह जाये, उसका स्वर्ग सुख मिलता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : दोष का फल स्वर्ग मिले ?

उत्तर : राग का फल स्वर्ग हुआ, दोष है न ? दोष। परन्तु वह यहाँ ध्यान करते-करते अधूरा ध्यान रहा, जो राग विकल्प उठाती—मैं पूर्ण करूँ... पूर्ण करूँ... पूर्ण करूँ... ऐसा विकल्प (उठा), उस विकल्प में पुण्य बँध जाये, स्वर्ग मिले। अन्तर आत्मा के आनन्द में एकाग्र हो उतनी ही निर्जरा और संवर होता है। कहो, समझ में आया ?

संवर-निर्जरा... मोक्षपाहुड़ २१ (गाथा)। क्या कहा है ? देखो ! इस आत्मा को

अरहंत और सिद्ध के रूप में चिन्तवन किया जाय तो यह चरमशरीरी को... देखो! भगवान आत्मा अरिहन्तस्वरूप है, अरिहन्तस्वरूप है और सिद्धस्वरूप है-ऐसे आत्मा को मुक्ति प्रदान करता है। चरमशरीरी होवे तो... और यदि चरमशरीरी न हो तो उसे वह आत्म-ध्यान से उपार्जित पुण्य की सहायता से भुक्ति (स्वर्ग चक्रवर्त्यादिक भोगों) को प्रदान करनेवाला होता है। लो! समझ में आया? पुण्य बाकी रहा। तत्त्वानुशासन में आता है न? कौन सी गाथा है? अरिहन्त का नहीं? अरिहन्त का ध्यान। पहले कह गये थे न अपने? अरिहन्त का ध्यान, वह शक्ति में अरहन्त नहीं हो तो ध्यान उसका... कौन सी? पता नहीं? कौन सी गाथा है? उसमें अर्थ किया था... उसमें है? पीछे... १९७ (गाथा)। मेरा तत्त्वानुशासन कहाँ गया? अरिहन्त का ध्यान करना, उसमें अरिहन्तपना है, शक्ति में अरिहन्त है, उसका ध्यान करते हैं। अभी भगवान अरिहन्त शक्तिरूप आत्मा है। वे कहे कि अरिहन्त नहीं और अरिहन्त का ध्यान करे तो व्यर्थ हो। नहीं।

अथवा भाविनो भूताः स्वपर्यायास्तदात्मकाः।

आसते द्रव्यरूपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा ॥१९२॥

ततोऽयमर्हत्पर्यायो भावी द्रव्यात्मना सदा।

भव्येष्वास्ते सतश्चाऽस्य ध्याने को नाम विभ्रमः ॥१९३॥

अथवा सर्व द्रव्यों में भूत और भावि स्वपर्यायों तदात्मक हुई द्रव्यरूप से सदा विद्यमान रहती हैं। शिष्य ने प्रश्न किया कि भगवान! अरिहन्त का ध्यान करे, वह तो मिथ्या है। आत्मा अरिहन्त तो है नहीं। समझ में आया? आत्मा अरिहन्त का ध्यान करे तो आत्मा तो अरिहन्त तो है नहीं, (वह तो) मिथ्याध्यान हुआ। तो कहते हैं, नहीं। खोटी बात है। आत्मा अरिहन्त है। क्यों है, देखो!

सर्व द्रव्यों में उनकी भूत और भावि स्वपर्यायों द्रव्यरूप से तदात्मक हुई सदा स्थिर रहती है। आत्मा अरिहन्त होनेवाला है, वह पर्याय अन्दर पड़ी है। १९२ है, हाँ! देखो! अन्दर चिह्न किया है। वह पुस्तक नहीं, यह दूसरी है। समझ में आया? इसमें तो मेरे चिह्न किये हुए हैं। भाविनो भूताः स्वपर्याया यह द्रव्य भगवान आत्मा, अरिहन्त और सिद्ध का ध्यान करे तो वह अरिहन्त और सिद्ध की पर्याय आत्मा में पड़ी है, अभी पड़ी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रगट पड़ी है ?

उत्तर : प्रगट नहीं, शक्तिरूप से। प्रगट अर्थात् शक्तिरूप से प्रगट ही है, शक्तिरूप से प्रगट ही है अर्थात् नहीं-ऐसा नहीं, ऐसा। क्या कहा ? नहीं, ऐसा नहीं। है... है... है... उसका प्रगटपना है। अन्दर आत्मा उस अरिहन्त का ध्यान करता है। समझे ? देखो !

भावि अरिहन्त पर्याय भव्य जीवों में सदा विद्यमान है। अरिहन्त का ध्यान करते हुए पुण्य-पाप विकल्प नहीं। वस्तु में अरिहन्तपद और सिद्धपद पर्याय में पड़ा है। वह सत् रूप है। सत् रूप है, देखो ! भाषा ऐसी। है, अन्दर है। अरिहन्त भगवान की पर्याय आत्मा में अन्दर वर्तमान है। समझ में आया ? अरिहन्त पर्याय के ध्यान में विभ्रम का क्या लाभ ? अपने आत्मा को अरिहन्त स्वरूप में जानने में विभ्रम की कोई बात ही नहीं। विभ्रम नहीं, निभ्रम है - भ्रमरहित है। भगवान मैं ही अरिहन्त हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, मेरी पर्याय में अरिहन्त-सिद्धपना है; बाहर से चीज आती नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अनन्त सिद्ध निकलते हैं।

उत्तर : अनन्त सिद्ध निकलते हैं। अनन्तानन्त केवलज्ञान की पर्याय (निकलती हैं)। क्या राग में, पुण्य में (वह) पर्याय पड़ी है ? निमित्त में पड़ी है ? अपनी एक समय की पर्याय में पड़ी है ? अरिहन्त पद में ध्रुव में पड़ी है - ऐसा कहते हैं, देखो ! समझे ?

यही भ्रान्ति के अभाव की बात अपने आत्मा के सिद्धरूप ध्याने के संबंध में भी समझना चाहिए। शंका का समाधान एक दूसरी सिद्धान्त दृष्टि से किया गया है। वह यह कि सर्व द्रव्य में उनकी भूत और भावि स्वपर्यायें द्रव्यरूप से तदात्मक हुई सदा स्थिर रहती है, सदा स्थिर रहती है। शाश्वत शक्ति अन्दर अरिहन्त-सिद्ध की पर्याय आत्मा में पड़ी है।

मुमुक्षु : आत्मा में बण्डल लगाकर रखी है ?

उत्तर : हाँ, बण्डल लगाकर रखा है। खोले इतनी देर है। बण्डल यह कागज के बण्डल ऐसे भी नहीं। अन्दर पड़ी है प्रगट... प्रगट सत् स्थिर, सदा स्थिर शाश्वत बिम्ब अन्दर अरिहन्त-सिद्धपद पर्याय आत्मा में पड़ी ही है।

द्रव्य से उसकी स्वपर्याय कभी जुदी नहीं होती। न द्रव्य भी स्वपर्याय से कभी

जुदा होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भव्य जीवों में भावि अरहन्त पर्याय द्रव्यरूप से तदात्मक हुई सदा विद्यमान है। अथवा भव्य आत्मा में सदा स्थित, सत् रूप अरहन्त पर्याय के ध्यान में विभ्रम की कौन-सी बात है ?

मुमुक्षु :

उत्तर : यह सभी अन्दर शक्ति सब पड़ी है। सब एक की एक बात है। कारणपरमात्मा अरिहन्तपद पड़ा है, सिद्धपद पड़ा है, अनन्त है। आत्मा में अनन्त सिद्धपद भरा हुआ है - अनन्त सिद्धपद, अनन्त केवलज्ञान पद, अनन्त केवलदर्शन पद आत्मा में भरा हुआ है। बाकी क्या है ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :

उत्तर : यह कहाँ भ्रमणा में कहाँ आवे ? ऐसा कहते हैं। यहाँ व्यर्थ में चिल्लाता है, इसलिए कहते हैं अन्दर देखने को निवृत्त होता नहीं। या तो शरीर का रोग और या तो पाप के परिणाम और या तो पुण्य के परिणाम देखने में रुक गया है। मैं अन्दर कौन हूँ ? पता नहीं। समझ में आया ?

‘जहाँ द्रव्य की जिन स्वपर्यायों का उल्लेख है, वे द्रव्यांतर के संयुक्त बिना ही स्वभाव से होनेवाली वस्तु प्रदेश पिण्ड के रूप में... वस्तु प्रदेश पिण्ड के रूप में स्वभाविक द्रव्य पर्याय है। इनके विपरीत जो द्रव्यांतर से स्वयं से उत्पन्न होनेवाली प्रदेश पिण्डरूप पर्याय होती है, उन्हें विभाविक द्रव्यपर्याय कहते हैं।’ विकार आदि। ‘ये जीव और पुद्गल दोनों द्रव्य में होती है।’ संयोग पर्याय होती है, उसका द्रव्य में सदा अस्तित्व नहीं रहता। वह विकारी - ऐसा कहते हैं। उसके लिए मूल में ‘सर्वदा सत्’ ऐसे पदार्थ का प्रयोग किया गया है। नयी उत्पन्न होती है न, इसलिए इस प्रकार (कहा है।) उसकी टीका है, परन्तु पाठ में है, देखो न! भगवान आत्मा की जितनी शुद्धपर्यायें प्रगट (होती हैं), वे सब अन्दर पड़ी हैं। तीन काल में कहीं बाहर से आनेवाली नहीं है, वरना तो उसे द्रव्य ही कहने में नहीं जावे। समझ में आया ?

यहाँ भी यह कहा, देखो! समझ में आया ? क्या कहा ? देखो! इसमें क्या कहा ? जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ भोजन जाए तो भुवनतल में आठ कोष तक किसलिए

न जाए ? यह इसमें आ गया न ? श्लोक की नीचे की पंक्ति में उपरलिखित भाव को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं - यह बात जो अब कहेंगे, उसका दृष्टान्त इसमें मोक्षपाहुड़ में २१ (गाथा में) आयेगा । (गाथा) २१ में दृष्टान्त आयेगा । जो सौ योजन चलने की शक्ति है, उसे आधा योजन काटना क्या ? ऐसे आत्मा के पुरुषार्थ से अन्दर उग्र से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट की है और मोक्ष की तैयारी है, उसे अब स्वर्ग जाना हो तो कितना ? वह तो बीच में आये बिना रहे नहीं । उसका पुरुषार्थ, स्वभाव के प्रति है, बाकी राग रहता है, तो वह स्वर्ग में जाता है, उसकी कोई विशेषता नहीं ।

विशेष कहेंगे ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)